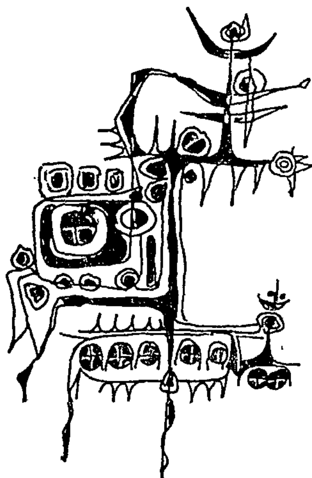
प्रथमा



राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

प्रथमा



• सदाशिव श्रोत्रिय

मूल्य : पैंतालीस रुपये

संस्करण : प्रथम, 1989

रेखाचित्र : डॉ. चिन्मय मेहता

सज्जा : आर. गणेशन

प्रकाशक

अजय प्रकाशन

मुख्य डाकघर के सामने, चित्तौडगढ 312001

मुद्रक : रूपा प्रिन्टर्स, तिलकनगर, जयपुर

PRATHAMA (Poetry)

by Sadashiv Shrotriya

Rs. 45.00

पू. जिया को
जिसने मेरे कवि होने को
पाला पोसा।

क्रम

मौन भंग

जून की
सांय सांय दुपहर
सूनी इमारत
गोली चली चटाख
कांच फूटा
खिड़की खिलखिला हँसी
मौन टूटा ।

मरुखंडी

आज यह मरुखंडी
पाकर किंस पलाश
अमलतास का आयुध
पुनः गमक उठी
हुई पुनः रणतत्पर
करने शरविद्ध
युवा हृदयों को
राग मुखर !

मकई का पात

चक्राकार बगूले में
गरुड़ सा ऊर्ध्व उड़कर
कहीं गायब हो जाता,
हवा थमने पर
अन्यत्र कहीं प्रकट होता
धीरे धीरे
उतरता कहीं दूर नीचे
अकेले जलपाखी सा
मकई का सूखा पात।

सुबह

भेड़ों के रेवड़ से
धूल-धूसर पूरब में
सोने के थाल जैसा
सूरज उग आया है।

खजूर

आलिंगन हेतु
अपनी बाहें फैलाओ
ताकि घेरे में आ सके उनके
एकाकी खजूर वृक्ष
ताकि जकड़ कर कसमसा उठें
उसके श्यामल-हरित अंग
ताकि गड़ें उसके शूल
तुम्हारे रोम रोम में
ताकि अंतर में विकसित हों
सिंदूरी फल-गुच्छ
ताकि महक उठे अंतर्बाह्य
मरुदेशीय सौरभ से ।

शारदीय शाम

किसी एकान्त मोड़ के
अकेले पेड़ पर
क्षण भर को ठहर
अन्तिम बार
देख चितवन भर
गई उतर
शारदीय सुरमई शाम ।

बरखा

पगली औरत की भाँति
बच्चों को
स्लेट–पुस्तक ले भगाती
भ्रमर वेणी को
हिस्टीरिया–उन्मादिनी सी घुमाती
दुपहर की तेज़ रोशनी में
चमकाती दांत देखो
आ पहुँची यहाँ तक लो
तुम्हारे पीछे बरखा ।

छुट्टी

बत्तखें ही
        बत्तखें ही
                बत्तखें ही बत्तखें

बगुले ही
        बगुले ही
                बगुले ही बगुले

सफेद यूनिफॉर्म वाले कम उम्र बच्चे
स्कूल से छूट
नुचे परों की तरह
सड़क पर फैल गये हैं।

वन श्री

आज मुझे वन श्री के चरण दिखे
काली, चमकीली, सूनी सड़क के किनारे
शीश पर था चंदोवा फागुनी आकाश का
पलाशों की
चटख लाल हँसी से
प्रतिध्वनित थीं दिशाएँ
देह सुरभि व्याप्त थी हवा में
मंडराते
मदहोश भ्रमर,
खोए संधान नहीं पाते थे लक्ष्य का
रह रह कर उड़ती थी धूल
वृक्ष हिलते थे
तभी एक पल में यह खुल गया रहस्य
किसके कोमल पदाघात से
नव-पल्लव खिलते थे ।

चांद

फेंकी है किसने
भला अभी आधी रात
धुनी रूई के ढेर पर
यह जगमगाती गेंद !

याचना

प्रकाश के पंख लगा
कनपटी के पास होकर
तीर की तरह चाहे
सन्न् से गुज़र जाग्रो
ऊपर ही ऊपर
ग्रहों-नक्षत्रों की भाँति
साथ चलो चाहे;
पर नीचे ग्रा
गलियों में
ग्रोलों की तरह उछलो मत
भटकी ग्रात्माग्रों की तरह
कोनों में छिपते न फिरो
ग्राधी रात
दु:स्वप्नों से
छाती पर बोझ डाल
नींद से न जगाग्रो।

ग्रीष्म

सारी रात सड़कों पर भटकती प्रेतात्माएं
जा छिपी कब्रगाहों में
पहाड़ों से कूद ओझल हुई
सुबह की ठंडी
हवा
अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सूर्य
तमतमा कर
निकल आया है फिर से
कमसिन पौधों को लू से सुखाने
खदेड़ मूक पशुओं को, पक्षियों को,
सरकारी अस्पतालों के बरामदों में
लावारिस मरीजों को,
बेहाल कर,
सताने ।

मालवाही ट्रक

कछुओं के झुंड जैसे
सोये मालवाही ट्रक
फिर अभी सुबह जागेंगे
मचाते घूमेंगे शोर
उठा लेंगे फिर से
सारी दुनिया अपने सर पर।

लेवी

लहलहाती ज्वार के
मोती भरे खेतों पर
सरकारी लेवी की
ललचायी आँख !

सूखा

चाँद फिर से एक बार
हिम्मत बटोर
क्षितिज से ऊपर आ
सोई धरती को देखता है
फिर से जकड़ लेता है उसे सूखे वक्ष का खयाल
प्रफुल्लित मुख चाँद फिर उदास हो जाता है।

हरसिंगार

हरसिंगार,
तुम दिन भर तो
सर झुकाये
म्लान रहे
फिर रात्रि के निःशब्द क्षणों में
वन्य
ओस-बिन्दुओं के साथ
चुपचाप खिलकर
मेरे पथ में बिछल गये !

तितली

काश
एक तितली ही होती मैं!
खिड़की बंद करने की
विवशता लांघ कर भी मैं
बराबर नाचती रहती
तुम्हारे सामने के गाछ पर तब।

डीज़ल इंजिन

शांत खड़ी पर्वत उपत्यका
हरियाली
ग्रां सुवह
कुहासा
धूम्रायित–नीला
सिग्नल के आगे
ज़ोर ज़ोर से धड़क रहे ग्र.ार को थामे
वेगवान इंजिन डीज़ल का
बढ़ कर कुछ कहने,
कुछ करने को
आतुर ।

सहयात्री

वह जो मकान या फैक्टरी समझ हम पर पैसे लगाता है,
जो गुड़ियों के मेल को ही समझता है पुण्य-लाभ, यश-अर्जन
जो अपनी नाव को अब भी हमारे नहीं, पूर्वजों के द्वीपों की
ओर खेता

मेरे दो आँसू
उस अड़ियल पिता के लिए।

वह जिसने अपनी तमाम योग्यता को
चंद लुटेरे आक्रामकों के हाथ रेहन रख दिया
और जो अब बंद हो गये दरवाज़ों को निराशा से पीट रहा

मेरे चार आँसू
उस ठगाये भाई के लिए।

वह जिसने हमारे गीतों की धरोहर को
एक विलुप्त होती पीढ़ी के भरोसे लापरवाही मे छोड़ दिया
जो कुछ सौन्दर्य-प्रसाधनों और संतति निरोधकों के ज्ञान
पर इठलाए

मेरे आठ आँसू
उस भटकी बहन के लिए।

मेहमान

आधी रात को
मेहमान आया
द्वार औचक खटखटाया
नींद के बनते भवन को
तोड़ने फिर लगा कुछ कह कर उसे
इशारे से चुप किया
बिछौना उसको दिया
सुलाया रात्रि के अंतिम प्रहर तक
खुद मगर फिर सो न पाया ।

पूर्णिमा

निश्चिन्त सोई
पूर्णिमा की
चाँदनी को
तंग करने
कथा वाचक
कर रहे हैं टेस्ट माइक
कस रहे है ढोलकें, तबले ।

जान अपनी
कभी इनसे
कभी छाती पर चढ़ी ही
आ रही
वेशर्म बदली से छुड़ाकर
भागने की फिक्र में है
चाँद ।

हम्माल

ला रहा
ढो कर
किसी हम्माल सा
ट्रक माल
अपनी पीठ पर ।
पहाड़ों की चढ़ाई पर
ज़रा रुक साँस लेता
घुमावों से झाँकता
बढ़ता हुआ
यह साहसी ट्रक
कर रहा है पार सीमाएं
कई शहरों, ज़िला मुख्यालयों को,
कई राज्यों की ।

नन्ही

खेतों की बची खुची
नोची नुची
घास जले ।
नन्ही छोकरी सी चपल ज्वाल
इधर से उधर जा
फिर उधर से इधर आ
सलाम करे ।

ट्रेजेडी

धान भरे खेतों पर खिंचे हैं
पंक्तिबद्ध खड़े हरे पेड़ों के पर्दे
बीच बीच से जिनके आकर झाँक जाते हैं
सांझ, उषा, सूर्य-किरण, सुरभित पराग-कण ।
आम्र-मुग्ध कोकिल का कंठ-स्वर पार्श्व से उभरता है
प्रतीक्षित है नाट्यारंभ
दर्शक अनभिज्ञ है
कि भीतर खलनायक ने
नायिका की हत्या कर दी है ।

काश फिर एक बार

काश हम एक बार फिर से मिल पाते
अपरिचित, किसी गुमटी में
किसी ऐतिहासिक इमारत के अकेले कोने में
या किसी राह की सराय में
जहाँ तुम्हें भी मेरी ही तरह रात बितानी होती ।

अपरिचय का वह आकर्षण
काश तुम्हारे मन में फिर जगा पाता एक बार
मेरे अस्तित्व मे उन गुणों की उम्मीदें
जो कि तुम्हें प्रिय हैं
काश मैं भी
कल्पना कर पाता फिर एक बार
तुममें उन सारी की सारी अच्छाइयों की ।

तुम होतीं मेरे लिए
सारी शुभेच्छाओं का मूर्तिमान रूप
(मैं भी तब तुम्हारे लिऐ वैसा ही कुछ होता)
अपनी कई वास्तविक कमजोरियों के छिपे चोर
काश रहे होते हमसे परस्पर अज्ञात ।

परपीड़क शब्दों के हिंस्र नाखूनों से
काश हम न नोचते-खरोंचते, पशुता-प्रेरित

मन की कई गहरी कोमल परतों को
सद्भाव के
अनेक नये अकुरों को
आने न देते ठडी उपेक्षा के पाँवों तले
रोक लेते काश हम
मनुहार भरे आग्रह से
मैत्री के अनाहूत, आगतुक क्षणों को।

काश अपनी आँखों में होती शेष
अब भी उत्सुकता की वही भोली चमक
प्रथम परिचय की वही मुग्ध, टटकी कातरता
वही, अपने को दूसरे को सौप देने की
वही, हर पल बिछल बिछल जाने की आतुरता।

कुछ अनाम नियमों के मग़रूर उल्लंघन से
बिगाड़ नही चुकते यदि हम यह समूचा खेल
तो तुम्ही कहो
सृष्टि के एक अनसिरजे क्षण में
क्या हम अपरिमित स्वर्गिक ऐश्वर्य की
किसी अब तक अनछुई सतरंगी कोर को
नही छू आते ?

चक्की

पहाडी तलहटी में चलती है चक्की
धकाधक, धकाधक हरे झुरमुटों में।
नीम काले तने के खड़े हैं धुंए से
भरे और दफ्तर खुले हैं बढ़ा
जा रहा यह शहर और आगे।
और भी दूर। छलांगें लगाता
भगा जा रहा दूर झरना।
डरे खेत, बीहड़, डरे आदिवासी
डरी है दिशाएं डरा दूर जाता
क्षितिज दौड़ती है इधर से
उधर बेतहाशा हवाएँ।

हैरत

उसने कुछ ककड़ों को अभिमन्त्रित करके
उस निश्चेष्ट पड़ी लोथ पर दे मारा
इर्द-गिर्द खड़े लोगों में एक सनसनी सी फैल गयी

अब शायद इसमें हरकत होगी
अब शायद यह इधर से उधर लोटने लगेगी
अब शायद इसके मुंह से निकलने लगेगा खून

....

और तब शायद एक तेज छुरी से वह उसकी जबान
काट डाले

....

किन्तु लोथ जैसी थी वैसी ही पड़ी रही, निश्चेष्ट
इर्द-गिर्द खड़े लोग मुंह बाये देखते रहे उसे
और तब वैसे ही देखते रहने के आदी हो गये

अब ख़ुद उसके हैरान होने की बारी थी ।

अजगर

ग्रीष्म :
अजगर खोलता कुंडली सुबह से ही
डरी परछाइयाँ छिपती घरों में।

चित्तौड़ दुर्ग

फैलता है दूर दूर
सूर्य डूबने के वक्त
पश्चिम के गह्वर में
हर दिन रजपूती रक्त
खोलने लग जाता तब
कुंडों का लोहित जल
उस पल लहू की ही धार बन उठती गम्भीरी।

कालिका की पैनी
भयावह लाल लाल आँखें
बीध बीध जाती हैं
सघन झाड़ियों में शरण ढूंढते अंधेरे को

सियारों के शोर से
सहम कर सर उठाती
जीर्ण महलों की छाती पर
सोई हुई चाँदनी

हवा के दाँतों से कटी
बुर्जियों की बगल बगल
यहाँ वहाँ घूमती है
लपटों को सौंपे गये यौवन की शेष राख।

चुकते विश्वास को
हताश गलबाँहियों में
ढूँढ कर, न पाकर
इधर भारी मन लौटते सैलानी
उधर पिछली रात जाने तक
दूर किसी गाँव में
लक्कड़ जलाये लोग
चीथते रहते है
किसी बूढ़े भजन के शव को।

हवा पर तान

डूबती उतराती रही
हवा पर तान
बड़ी देर तक रात
खींच लाती रही
अतीत के सोये कुएं से स्मृतियाँ ।

अंधेरे में केश राशि छितरा नहाती कभी
तनी धनुष देह यूँ ही अजाने छुआती कभी
कहीं दूर ले जा सहसा गायब हो जाती अथवा
उन्हीं उन्हीं मोड़ों पर बेमतलब भटकाती
फिर मिटती
बन जाती केवल आवाज़ किसी मद्धिम सुर वीणा की
उभर आती फिर से
कभी डुबकी लगा तट पर उभरते प्रियजन सी ।

रात बीतने के साथ
बड़ी देर, इसी तरह
स्नायविक तनावों
अतृप्त वासनाओं
या छोटे बच्चों के साथ
हुई क्रूरताओं के जख्मों पर
मरहम सा लगाती रही
छत पर बुलाती रही

कभी पास आती रही
कभी दूर जाते हुए
हाथ सा हिलाती रही
हवा पर तान।

निर्लज्ज

चौड़े धाड़े लो बदल रही कपड़े नगरी
पीछे हट कर जा खड़ा हुग्रा
बूढ़ा पहाड़ ।

शहर छोड़ते हुए

सबकी सब आवाजें जैसे खोखली हो गयी हैं
भर गयी है तमाम खामोशी रहस्य में
छतें, चौबारे, गलियां, कमरे, कॉरिडोर
पूर्ववत् पांवों की थापों से बज रहे हैं
फाइलें, घंटियां, बाबू, चपरासी
किसी की भी हरकत में कहीं कुछ अंतर नहीं
कोई एक लमहा पास आकर समझाता है
कैसे हो जाता है अपना आदमी बाहर का ।

बरसात होती रहने तक हरी ही रहेगी घास
वैसा ही सुनहरा फिर चमकेगा सूरज
कहकहे, तालियां, खनखनाहट, मीठे बोल,
हवा में तिरते होंगे रंगीन चिड़ियों के पंख
कंकड़ियों से बनेंगे हर रोज़ नये नये वृत्त
मिटेंगे पुराने दूर फैल कर, हल्के होकर
तट पर खड़ा रहेगा हँसता हुआ कालपुरुष
पर बर्फानी चोटियों की ओर इंगित करके
या श्यामल बदन को सहसा कमल से छुआ कर
तुम्हें कौन अब डरायेगा ?

शिरीष

हवा में बज रही थी कल तक खँजड़ियाँ शिरीष की
उतरी आज
डाल डाल
हाथ पकड़ हरियाली।

करनी है ग्रीष्म की
अगवानी उसे
सजाने है
वृन्तों पर, अलग अलग,
रूई के गाले जैसे नन्हे गुलदस्ते,
छिपा कर कहीं रखे हुए
अतिविशिष्ट, आयातित
सेण्ट से महकाने है
दरीचे, कूचे, गलियारे,
हवा के सारे राजमार्ग
गुजरेगी जिनसे
कल सवारी गणगौर की।

दूसरी दुनिया

एक दूसरी ही दुनिया में जन्मा मैं,
उसी मे मैं बड़ा हुआ;
तुम्हारी, तुम तमाम लोगों की, काठ सी कठोर,
सूखी, नीरस दुनिया से अलग
दूसरी ही दुनिया में।
यह पहियों पर लुढ़कती, ईंट–लोहे की मृत दुनिया
नहीं रही मेरी कभी।
मेरी उस दुनिया में शीशे सा रहा बहुत नाजुक कुछ
किन्तु बहुत जीवत–बचपन के रिश्ते सा।
दंगल मे उतरे तुम, औरों के कधों पर खड़े हुए, ऊँचे उठे,
करते रहे अपने को बराबर क्रूरताओं से सुन्न
अपने दर्पण को रेत पर घिस अंधा बनाते रहे
होते रहे ज़्यादा तैयार;
मैं शरीफ़ों के पिटने का, हलाक तक हो जाने का,
अफ़सोस ही करता रहा तब से अब तक,
और शायद आगे भी करता रहूँ वैसा ही।
लगता है अब भी हूँ मैं अपनी उसी कमज़ोर
पर फिर भी उसी सुन्दर, सलीकेदार दुनिया का बाशिन्दा
रहूँगा उसी में, उसे बदलूँगा नहीं, चाहे तुम्हारी इस दुनिया को
जरा भी बदल पाऊँ या फिर चाहे

कुछ न कर पाऊँ शायद
वात भी न समझा पाऊँ
तुम्हें मैं अपनी ।

सेमल

फूल लद गये है या
भँवर उड़ गये है या
डालों पर आ बैठा कौओं का झुंड
या कि तैर रही तेज़ तेज़ पखों पर चिड़ियाँ
या उड़ रहा पराग
या भँवर गिर रहे है
या फुलसुंघनी फूलों में डुबो रही चोंच
या भरे भरे
लटके होठों वाले
फूलों पर भँवर
कर रहे है गुंजार
या कि गिर रही हैं चिड़ियाँ
या फूल उड़ रहे हैं
या भाग रहे हैं कौए
लाल लाल फूल लदी डालों में
इधर–उधर
भँवरों पर कूद रहे फूल
या कि चिड़ियों को भूल भूल
भगा रही डालें

ये बिना बात चोंचों से
गिरा रहे कौए
क्यूं फूल बड़ी सुबह–सुबह
सेमल के इर्द गिर्द
घूम आज
काहे की मची है ?

लाल तिकोन

सलवार और चिपटे हुए कुर्ते से
साफ़ साफ झांकता है
लाल तिकोन ।
धनुपाकार भौंहों
चकित हिरनी सी चितवन
या पके बिम्बाफल जैसे अधरोष्ठों से
अब ध्यान ही नहीं बँटता
सब नकली नकली और फालतू सा लगता है
यथार्थ और मूर्त
बस अब एक ही नज़र आता है
लाल तिकोन ।

रूलेट

एक मिनट रुक कर
ललाट पर शिकन डाल कर
वह फिर से चला देता है
रूलेट चक्र ।

उधर पृथ्वी पर किसी
नवयुवक की अकाल मृत्यु
किसी अकेली औरत के लिए
तन वेचने की विवशता
किसी पिता के सीने में
गाढ़े आँसुओं का जम जाना ।

इन्सान के पाँवों में आप चाहें तो लगाइये
धर्म दर्शन की खपच्चियाँ
फिर कीजिये
चालीस दिन मृत्यु समारोह
या तर्क और सायंस की
मिट्टी तले दवाकर
भूल जाइये सदा
सदा के लिए ।

सिर्फ एक मोहरे का खाना बदल,
तुम्हारी चाल क्षण भर में अनायास ही नाकाम कर,
अपना उत्तरीय झाड़,
हँसते हुए
उठकर चल देता है
वह सत्यभामा के भवन की ओर ।

अर्द्ध रात्रि

अर्द्ध रात्रि
आकाश वासुकि सर पर
एक धरातल : काल
मैं—मेरे विस्मृत प्रपितामह
और बीच अनगिन संवत्सर
जोड़े फिर भी हमें एक अनजाना बंधन।

अर्द्ध रात्रि
आकाश वासुकि सर पर
एक धरातल : धरा
मैं—तुम मेरी कौन
बीच में अगणित योजन
जोड़े फिर भी हमें एक अनदेखा बंधन।

डिन्डोली तालाब में डूब जाने वाले युवक के बारे में

बीचोंबीच
लाकर प्रकट हुआ जल
नीच शत्रु वन
रक्षक भय लगा दिखलाने कठिन पैने नख
तन गयी थपेड़ों की तलवारें चारो ओर।

पर्वतों की प्रहरी प्राचीरें मौन !
साथी सोन जाल को
हिलोर दूर निकल
जाने वाले का कौन ?

मूर्खता की हद पर समाप्त होती साहसिकता
गला भींचते बढ़ते
हिमजल के नरभक्षी हाथ
स्वजनों की उतराती डूबती पुकारें आर्त ।

अंधकार की फ़सील पार कर जाने को छटपटाती तारा मीन
कीच में कभी से दबी अनगिनी ठठरियों भरे गर्त में बदलती देह
जल तट पर झुक आते नीले आकाश में
गोल गोल चक्कर लगाते व्यर्थ दूर जाते,
लौटते जल पक्षियों का अर्थशून्य कलरव ।

लड़ाई

इस बार
भारी है लड़ाई
दुश्मन धनवान
वाणी से मोहक
पैनी कटार जैसे इस्पाती दाँतों को
रूप बदल
छोटे से मुख में छिपा
सकने में कुशल ।

और बचाने को ? इस बार
आदमी को आदमी
बनाये रख सकें
ऐसी थोड़ी सी चीज़ें :

पहाड़ी प्रपात
फैली हरियाली
नन्ही सी चिड़िया एक
फूलों लदी डाली ।

बसंत की प्रतीक्षा

बसन्त का रथ मैंने दूर से आते देखा
उसका रंग
पीले क्रिसेन्थिमम में था और सरसों के खेतों में
और बसन्तोत्सव के रोज पल्लवी के पल्लू में।

कि कश्मीर में हिमपात हुआ
रेडियो
अखबार
और पीछे पीछे
ठंडी हवाएं
कोहरा
मेघाच्छन्न आकाश
.......और बसन्त का रथ
दिखना बंद हो गया।

एक सुबह लगा फिर बसंत आ पहुंचा है
पर ग्यारह बजे के लगभग फिर ठंडे थपेड़े
इस वर्ष यह स्वेटर,
यह शाल, यह कम्बल नहीं छूट रहा!

वसंत की प्रतीक्षा में हैं डफ
प्रतीक्षा में है किशोर-किशोरियाँ
प्रतीक्षा मे
पेड़ों की डालों पर कोना कोना कोंपलें
पिकी का पचम स्वर
तथा आम्र-मजरियाँ ।

सांसों के बैल

अनवरत चलते रहते हैं
सांसों के बैल
चरते हुए दूर निकल जाते है कहीं दूर
आंखों से ओझल हो जाते हैं
हम भूल ही जाते हैं उन्हें ।

पर रस्सी से वँधे वँधे
वे लौट आते है फिर पीछे
ऊपर, ऊपर, ऊपर,
नीचे, नीचे और और नीचे,
न जाने किन अनदेखी घाटियों में
किन जंगलों में
चलते रहते हैं
चरते रहते हैं सांसों के बैल ।

और हम महत्वकांक्षाओं की
इस मंज़िल से उस मंज़िल तक
एषणाओं के इस मकाम से उस मकाम तक
निरर्थक श्रम और राजनीति और निजी शत्रुताओं के बीच
अपनी तलवारें भांजते
हांफते हुए
दौड़ते रहते हैं

जागते और सोते और जाग कर
भागते पीछे पीछे
उन्ही उन्हीं एषणाओं और उन्ही महत्वाकांक्षाओं के।

न जाने कितने दिन इसी तरह
इसी तरह कई मास
कई कई बरस चलते रहते हैं साँसों के बैल
पर एक दिन अपनी रस्सियां तुड़ा वे
कही दूर निकल जाते हैं
कभी लौट कर न आने।
और तब यह श्रम और एषणाओं का हममें बजता अनवरत संगीत
एक लम्बी धुन के साथ
यकायक खामोश हो जाता है
सब कुछ तब पड़ा रह जाता है बिल्कुल सूना और शांत
पूरी तरह खाली और सर्वथा निश्चेष्ट।

सेरिये में बेर

कब से गिर रहे हैं बेर
सूने सेरिये में
सभी बच्चे हो गये शायद सयाने ।

बदनसीब

बदनसीब अब अपने
निपूती न रहने पर पछता अपने
बेटे को बेटे का लहू पीता देख
अपना कलेजा जला।

फँसी उम्मीद जब चला
गोलगोथा की ओर काफिला
अपना अब बुद्ध भी सुरक्षित नहीं
फैला बड़े लोगों का ऐसा जबड़ा।

जितना भी अनाज पीस
जितना भी बोझदार हथौड़ा चला
इन तमाशबीनों को मनाने की कोशिश में
टाट पटल नाश कर दिया।

कोलतार का डिब्बा माथे पर उलट
मैं पलीता उठा
बार बार पीछे देख
सब को दु:स्वप्न समझ
हमेशा लिया।

बदनसीब ----

खौफ़

चिमटियों से रहे हैं खींच चमड़ी दोस्त चारों ओर
कैसी नकाबें डाले हुए
झूठी हँसी की !

सकोगे पहचान ये चेहरे ?
यह पड़ोसी वह पड़ोसी
वह सगा अपना
रहा जो चाटता पत्तल हमारी आज तक
वह चोर तुमको पता है
घर में अटैची से
पार कैसे कर गया पैसे !
भरोसा क्या करोगे
हाँ धर गया जो हाथ उस दिन
पीठ पर अपनी उषा की
अंधेरे में यह वही बदमाश
इधर कुछ खुस पुस
उधर कुछ हँसी करता
कह गया कुछ बात हमसे यही गुण्डा ।

बदनसीब

बदनसीब अब अपने
निपूती न रहने पर पछता अपने
बेटे को बेटे का लहू पीता देख
अपना कलेजा जला।

कैसी उम्मीद जब चला
गोलगोथा की ओर काफिला
अपना अब कुछ भी सुरक्षित नहीं
फैला बड़े लोगों का ऐसा जबड़ा।

कितना भी अनाज पीस
कितना भी बोझदार हथौड़ा चला
इन तमाशबीनो को लजाने की कोशिश में
टाट पहन नाच कर दिखा।

कोलतार का डिब्बा माथे पर उलट
ले पलीता उठा
बार बार पीछे देख
सच को दुःस्वप्न समझ
हथेली हिला।

बदनसीब........

खौफ़

चिमटियों से रहें है खींच चमड़ी दोस्त चारों ओर
कैसी नकाबें डाले हुए
झूठी हँसी की !

सकोगे पहचान ये चेहरे ?
यह पड़ोसी वह पड़ोसी
वह सगा अपना
रहा जो चाटता पत्तल हमारी आज तक
वह चोर तुमको पता है
घर में अटैची से
पार कैसे कर गया पैसे !
भरोसा क्या करोगे
हाँ धर गया जो हाथ उस दिन
पीठ पर अपनी उषा की
अंधेरे में यह वही बदमाश
इधर कुछ खुस पुस
उधर कुछ हँसी करता
कह गया कुछ बात हमसे यही गुण्डा ।

हमारी चेन ही ले जाय
जाली काट डाले
पुलिस से मिल जाय

वंशबेल

ज़रा सी गलती ने
कोख भर दी बहू की
हुई वंशबेल फिर से पल्लवित, फलवान ।

एक बार और तेज़ करो
शल्य चिकित्सक औजारों को
और सूक्ष्म बनाओ तकनीक
और साथ ले लो अपने बहुत सारी रूई ।

पढ़े लिखे मूर्ख नहीं हैं ये लोग
वरना कितने साधन उपलब्ध
आज युवाओं को खिलाने पिलाने खुश करने के
पता नहीं इन्हें
कहाँ जा पहुँची आबादी
पृथ्वी आज
सिमटकर हो गई कितनी छोटी ?

पता नहीं इन्हें
कितने ग्रहों
कितने तारा समूहों तक हमें जाना है
कितने पिछड़े देशों का देखना है

कुपोषण, अकाल हमें
मानवता की शांति की रक्षा के लिए
युद्ध अभी कितने और शेष !

बनानी है हमें कितनी योजनाएं
लगाने है कितने सुपर कम्प्यूटर
नहीं पता इन्हें कितनी जल्दी है लगानी
बड़ी लंबी छलांग हमें
अगली सदी में ।

सोचो अब
लोरियों के लिए किसे फ़ुर्सत है
किसे आज रोपने हैं बोधिवृक्ष
नाभिकीय ऊर्जा भला कौन ढूंढेगा आज
मूलाधारचक्र मध्यस्थित नाभिकमल में !

कहकशां का कोई छोर
हेल परावर्तक की आंख से अजाना नहीं
एक योनिजा की जगह
अनेकों अयोनिजाएं
होंगी कल मानव की रहस्यमय मुट्ठी में बंद
बुढ़ापे में केशों को
जरूरत रहती है सिर्फ नियमित खिजाब की
·······और फिर यह दादी मां बादी मां
बनने की भला आज
चाहत किसे है ?

गुलकामड़ी

छुटपन में
जब हम
पेड़ पर चढ़ गुलकामड़ी खेलते थे
तब भला यह जानने की
किसे फुर्सत थी
कि उस खेत और उस पेड़ का मालिक कौन था !

अब अच्छी तरह जान गये हम पेड़ के मालिक को
और यह भी जान गये कि वह खेत
क्यों और कैसे बिका था पिछली बार
पर भला
अब गुलकामड़ी खेलने की किसे फुर्सत है !

मृत्यु

अंधियारे बीहड़ में
कभी कहीं कभी कहीं
घूमती मरखन्नी गाय
तीखे खून सने सींग
दिख जाते जाते हुए
कभी यहाँ कभी वहाँ ।

नया नर्क

मैं रचूँ
तुम्हारे लिए नया ही नर्क
एक पुर्जा रख दूँ
छोटा सा भीतर
ताकि और सब हँसें देख कर पर्दे पर
लोहा लेते नायक को दस दस बदमाशों से एक साथ
तुम रो न सको
मालिक की सुन्दर बेटी भी यदि
हीरो की हो जाय।
जिसे सब कहें प्रगति
वह रहे तुम्हारी नजरों में
भोंडेपन का विस्तार
तुम बँधे देखते रहो
तुम्हारे सबसे सुन्दर
बेशकीमती सपनों से
फूहड़ लोगो का बलात्कार।
बीवी पूछे
क्या हुआ तुम्हें
क्यूँ मुंह लटकाये बैठे हो ?
क्या सारा बोझ तुम्हारे सर पर ही है

पूछें लोग
बोतलों से लिम्का की चुस्की ले बेफ़िक्री से।
तुम लस्त पस्त हो उठो
तड़फते रहें आंतरिक पीड़ा से मस्तिष्क स्नायु
पर अर्थहीन हो जायें तुम्हारे शब्द
गले में घुट जायें
या सभी ओर से घिरते आते
कोलाहल में डूब जायें।

कबूतर बन जाओ
अब रचूँ तुम्हारे लिए
नया मैं एक नर्क।

जटायु

जटायु !
तुम्हें तलाश करते हैं
अब भी हम
आकाश में बहुत ऊँचाई पर उडती अबाबीलों में
हाइटेन्शन तारों से अंधेरे में टकराकर
उल्टे लटक गये चमगादडों में
या हुकूमत के खेल में विश्वासपात्र चरित्रों का मुखौटा लगाये
कुंठित सत्ताकामियों में,
गिद्धों में, बाजों मे या पजों में चाकू बाँध लड़ते मुर्गों में ।

हर बार तुम्हारी कुर्बानी एक ढोंग साबित होती है ।
हर बार तुम्हारी लटकी गर्दन के बावजूद
कोई कहता है तुमने आँख झपकाई थी ।
हर बार तुम्हारा खून कोई गाढ़ा रंग,
तुम्हारा अंग-भंग किसी सीनियर या जूनियर सरकार का करिश्म
निकल आता है

राम कथा में प्रतिदिन कोई तुम्हारा प्रसग ले आता है।
आँखों में आँसू भर भर लाते हैं कथा वाचक
पर समझ नहीं पाते हम कि उनकी बातों पर रोयें
या ठट्ठा मार कर हँसें ।
हर पक्ष अपनी बात माइक्रोफोन पर

और समर्थन में उठे कई हाथों से घिर कर कहता है।
कौन सीता, कौन रावण,
कहाँ राम जन्मभूमि
कैसी श्रीलंका
इस झंझट से मुक्ति के प्रयास में
जब हम शवासन से लेटे होते हैं
मन के किसी अंधेरे कोने से
झींगुर की झन झन सी कोई आवाज़ कहती है
गँवार ! अब त्रेतायुग कभी का जा चुका है।

बिन्दु

वह छोटा सा बिन्दु
गढ़ी जिसमें होकर
यह वर्तमान की खडी रेख
जिसकी अनदेखी खिड़की से होकर दिखता
धुंधला-धुंधला
सारा अतीत
पर फिर भी जिसके लिए बंद, अनजाना
कल का द्वार
निहित जिसकी गति पर
हर ज्यामितीय आकार
न जाने कितने आयामों में
कितने भिन्न भिन्न
अर्थों वाला
मैं
वह छोटा सा बिन्दु ।

